ISSN No. 2394-9996

आदिवासी जीवन और प्रवृत्ति

राजेंद्र सोमा घोडे
पी.एच्.डी. शोध - छात्र
हिंदी विभाग,
पुणे विश्वविद्यालय, पुणे.

भारत का आदिवासी समाज अनेक जन-जातियों में विभाजीत हैं। इनमें से बहुत सारी जनजातियाँ अधिकांशतः पहाड़ी जंगल तथा दूर दराज क्षेत्रों में रहती हैं। जंगलों मे रहना कोई साधारण बात नहीं है, किंतु ये लोग सदियों से ऐसे ही इलाकों में बस्तियाँ बनाकर रहते आ रहे हैं। आज भी ये लोग विकास के लिए तरस रहे हैं किंतु फिर भी विकास अभी तक उनको आगे नही ले पा रहा है। इनमें से कुछ लोग पढ़-लिखकर अपना जीवन यापन कर रहे हैं किंतु यह केवल कुछ अंशतः प्रमाण हैं। कोरकू, वारली, गोंड, भिल, ठाकर तथा अन्य ऐसी कई जनजातियाँ हैं जो आज भी बगैंर बिजली के अंधेरे में ही अपना जीवन यापन कर रही हैं। मध्यप्रदेश का पाताल कोट आज भी शेष भारत से अलग है जो चारों तरफ से पर्वत मालाओं से घिरा है। वह दो-ढाई किलोमीटर नीचे गड्ढे में बसा है। जहाँ तक सभ्यता क्या जो अपने आप को सभ्य कहनेवाला समाज भी अभी तक नहीं पहुँचा हैं। जहाँ अंधेरी गुफाएँ उनके घर हैं तो बड़े वृक्षों की जड़े बाहर आने के रास्ते हैं। यह प्रदेश गोंड़ जनजाति का गढ़ माना जाता हैं। उन्हें आधुनिक जीवन पसंद नहीं है। इसलिए ज्ञानचंद गुप्त लिखते हैं- ``बस्तर की गोंड जनजाति आज भी आधुनिक जीवन सभ्यता से अलग अपने वनों-घाटियों, नदी - नालो, पशु-पक्षियों, देवी - देवताओं तथा रूढ़ियों और संस्कारों से जुड़ी हुई आदिम, संस्कृति में जी रही है। मानव और प्रकृति का निश्चल संबंध इस संस्कृति का मूल आधार है।``[1] इस तरह की स्थिति हर एक राज्य में जहाँ आदिवासी लोग रहते हैं वहाँ दिखाई देती है।

आजादी के साठ साल बाद भी आदिवासी जनजाति गुमनाम जीवन जी रही हैं। कभी घुमन्तू कभी अपराधी तो कभी असभ्य बनकर। इन्हीं के नाम पर करोड़ो-अरबों रूपए आवंटित हुए हैं और हो रहे हैं लेकिन इनकी दशा में अभी भी गुणात्मक विकास दिखाई नहीं देता। इतिहास में आदिवासियों को बंदर, भालू

बनाकर उनकी अस्मिता के साथ खिलवाड किया गया। उन्हें राक्षस और असुर कहकर उनका संहार किया गया और आज भी अन्याय और अत्याचार की यह परंपरा निरंतर जारी है। विकास के नाम पर उन्हें उनके ही घर-जमीन से बेदखल किया जा रहा है। आदिवासी समाज अनपढ़, अज्ञानी दरिद्र और अरण्मुखी संस्कृति से व्याप्त होने के कारण सरकारी अधिकारी, राजनेता और वन अधिकारी मिल-जुलकर आदिवासियों का शोषण करते हैं। अनेक विकास की योजना जीवनावश्यक वस्तुएँ, अनाज यहाँ तक आदिवासी के जीवन जीने के साधन जल, जमीन जंगल पर अपना अधिकार जमाते हैं उनपर तरह-तरह के अन्याय अत्याचार करते है। इसके कारण भारत में आज अनेक आदिवासी जनजातियाँ विस्थापित होकर रोजी-रोटी की तलाश में शहर में आकर अपना लहू-पसीना एक कर मेहनत और ईमानदारी से काम करते हैं फिर भी उनको दो वक्त की रोटी भी कायदे से नसीब नहीं हो रही है।

❖ आदिवासी लोक - संस्कृति :-

लोक संस्कृति सदैव स्थानिय होती है। यह किसी न किसी सीमित क्षेत्र के संस्कृति की द्योतक होती है। आदिवासी संस्कृति की अपनी विशिष्ट पहचान है जो अन्य सभी संस्कृतियों से आदिवासी संस्कृति को अलग करती है। इसलिए ई.वी. टेलर लिखते है- ``संस्कृति वह जटिल इकाई है जिसके अंतर्गत आचार-विचार, विश्वास रीति-रिवाज, विधि-विधान एवं परंपराएँ आती है। इसक`अंतर्गत सभी समस्याएँ एवं आदतें शामिल हैं।``[2] आदिवासी समाज अपने बचाव के लिए अपने लोक-संस्कृति का बचाव करते हैं। शिकार करना, शहद इकट्ठा करना-बेचना, दवाई जमा करना, रस्सियों पर खेल दिखाना ऐसे कितने की काम है जो अपनी संस्कृति की पहचान कराते हैं। जड़ी बूटियाँ खोजना, बीमार व्यक्तियों का इलाज करना यह सब करके धन कमाते थे और अपनी लोक-संस्कृति को जीवन से जोड़ते थे। आदिवासी समाज में लोक-संस्कृति के विविध उत्पादन अत्यंत विकसित अवस्था में पाए जाते हैं। यह लोकगीत, लोकनृत्य, लोककथाएँ, लोकोक्तियाँ समृद्ध भारत के कलाकारों को प्रेरणा देते हैं।

❖ वेश - भूषा :-

आदिवासी लोगों की रहन - सहन वेश - भूषा बिल्कुल साधारण है। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण वह अन्य विकसित समाज की तरह वेश-भूषा नहीं कर सकते। वे कमर पर कपडा पहनते है और शरीर में सदरा पहनते है। महिला की वेश भूषा हर एक आदिम जनजाति में अलग-अलग है। भिल्ल जनजाति की महिलाएँ साड़ी के दो टुकड़े करके एक टुकडा कमर में पहनते

है और दूसरा शरीर के उपर रखते है। ठाकर और महादेव कोली की महिलाएँ सिर पर लाल रंग का कपडा रखते है। माड़िया जनजातियों की महिलाएँ ब्लाऊज और कमर में एक कपडा पहनते हैं। जिस आदिवासी जनजाति के लोग नगरों, महानगरो के संपर्क में आये हैं उनमें धीरे - धीरे बदलाव दिखाई दे रहा है। लेकिन इनका प्रमाण कम प्रतिशत हैं।

❖ **अतिथियों का सम्मान :-**

पूराने जमाने में हर एक समाज में अतिथियों को `अतिथि देवो भव:` कहा जाता था। उनका सम्मान किया जाता था लेकिन आज इस वैश्विकरण के युग में अतिथि तुम कब जाओगे कहना पड़ रहा है। क्यों-कि अतिथि हर एक के लिए मुसिबत पैदा हो गई है। लेकिन आदिवासी समाज में अतिथियों का आज भी स्वागत किया जाता है। अतिथियों के आगमन में गीत गाया जाता है। इस स्थिति का चित्रण `जंगल के फूल` उपन्यास में अंग्रेज अफसर के आगमन में गोंड आदिवासियों के स्वागत गीत में दिखाई देता है-

> ``तेना नामुर ना रे ना मुरे नाना
>
> तुभी नाका जोड़ा डोंगा हामी ना कुन्दे खड़क सरकार चो।
>
> रैयत के दंड पडली दरभा ठाना चो सड़का हो तै नाना मुरेड्ड।।``[3]

❖ **विवाह प्रथा (पद्धत) :-**

आदिवासी जनजातियों में पहले पाँच-छह दिन तक शादी होती थी, लेकिन अब इसमें परिवर्तन हो गया है। दिन कम हो गए है लेकिन शादी की परंपरा में बदलाव नहीं आया है। जिस आदिवासी जनजाति के लोग नगर, महानगरों सान्निध्य में आए हैं उनमें बदलाव हो गया है लेकिन इसका प्रमाण कम प्रतिशत है। बाकी जो जनजातियाँ है जो आज भी जंगलों में, पहाड़ी इलाखों में रहती है उसमें आज भी पहले जैसी पूरानी परंपरा है और वह उसी तरह से विवाह करते है। अलग - अलग जनजाति की अलग-अलग परंपरा है। आदिवासियों के विवाह में सामूहिक नृत्य होता है इसमें महिला और पुरूष एक साथ नाचते है। वारली जनजाति में विवाह के समय पारपा नृत्य, ठाकर जनजाति में ताशा और ढोल नृत्य होते हैं। कोकणा जनजातियों में झांगली और गोंड जनजाति में मादरी आदि वाद्य परंपरा द्वारा विवाह संपन्न होता है। इनका विवाह किसी मंगल कार्यालय में नहीं खुद अपने गाँव में होता है। इस जनजातियों में शादी के समय शादी करनेवाले परिवार

के लोगों को पूरा गाव हर काम में खुद का काम छोड़कर सहायता करता है और आनंद लेते हैं।

❖ **अंध विश्वास/अंधश्रद्धा :-**

आदिवासियों के पिछड़ेपन उनके शोषण तथा मुख्य धारा में न आने का एक महत्वपूर्ण कारण उनका धार्मिक अंधविश्वास है। उनके अंधविश्वास को देखकर सभ्य समझा जानेवाला समाज उनकी हँसी उड़ाता है। मंत्र और जादू टोना में वे अधिक विश्वास रखते हैं। अंधश्रद्धा आदिवासियों को पीछे खिंच रही है। विशेषत: उनकी महिला इसका अधिक शिकार हैं। आदिवासी महिलाओं में शरीर पर गोंदना या गुदवाना भी एक धार्मिक अंधविश्वास है। इस प्रकार गुदवाने से महिला यह मान लेती हैं कि मरने के बाद उन्हें नरक मिलेगा। मरने के बाद भगवान के घर यही लेखा साथ जाता है। जिसके शरीर पर गोंदना नहीं वह नरक भोगता है, यही देह का चिन्ह तो साथ जाता है। इस तरह आदिवासी समाज की दुनिया अंधविश्वासों के कारण काफी अंधकारमय है। इसका अच्छा उदा. `कब तक पुकारू` उपन्यास में दिखाई देता है। नायक सुखराम अपनी पत्नी प्यारी को स्वान में साँप दिखने पर आगामी कष्टों से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए बोल - कबूल करते हुए कहता है-

``मैं हनुमान जी पर दीपक चढाऊँगा

महादेव जी पर बेल-पत्तर चढाऊँगा,

पीर के मजार पर दिया चढाऊँगा,

ईदगाह की चीटियों बुरा डालूँगा,

तू कहेगी तो पंडित को सौधी भी दे आऊँगा,

भगवान कसम ठाकूर जी के मंदिर जाकर प्रार्थना करुँगा।``[4]

ऐसे कितने ही अंधविश्वासों ने आदिवासी समाज को जकड़ा है। जिसके कारण आज भी आदिवासी समाज उन्नति नहीं कर पाया।

(I) देवी - देवता संबंधी विश्वास :-

आदिवासी लोगों के अधिकतर देवी-देवता ग्राम से जुड़े है। उनके द्वारा विविध देव - देवताओं की पूजा होती है। उनके अलग - अलग जनजातियों में अलग - अलग प्रदेशों में, राज्य में अनेक प्रकार के देवी - देवता दिखाई देते है।

``उदा. मध्यप्रदेश के आदिवासियों के देवी - देवता दिल्लीश्वरी, दत्तेश्वरी, शीतल माता, गोदना माता, मावली माता एवं अपने पूर्वजों की धूम-धाम से पूजा से पूजा आराधना करते है।``[5] महाराष्ट्र के आदिवासियों में मरीआई, चेडोबा, म्हसोबा, पीरोबा,महादेव, वरसुबाई, कळसुबाई आदि देवी देवता है, जिसकी वे पूजा करते है तो कभी वे देवी-देवता के नाम से उत्सव मनाते है। आदिवासी लोक कभी दुःख में होते है तो देवी-देवताओं के सामने बोल-कबूल करते हैं। कई कुलदेवी, देवता शरीर पर गोंद लेते हैं।

(II) भूत-प्रेत की मान्यताएँ :-

आदिवासी लोग भूत-प्रेत मानते है। इन लोगों के भूत-प्रेत देवी-देवताओं से भी महत्वपूर्ण है। जो काम देवी - देवता नहीं कर सकते वह भूत कर सकते हैं ऐसी उनकी धारणा है। चुड़ैल, डाइन आदि को भगाने के लिए मंत्र पढ़े जाते हैं। `जंगल के फूल` उपन्यास में चुड़ैल का वर्णन मिलता है। चुड़ैल गाँव में आये अफसर के पीछे पड़ती है, गाँव का ओझा अन्य आदिवासी समाज की भाँति उस पर से चुड़ैल के साये को भगाने के लिए मंत्र पढ़ते हैं -

``काली है कंकाली है, टीले वाली है,
गली गाँव की है
मेरे हाथ बीर भवानी
खड़ी पास जल देवता रानी
छत था थी छा छा छा
कौन लगा बता?
सूर्खिया, अंगिया, बहरी
चैतू, जेठू, सिंगरू, छा, छा, छा।``[6]

इस प्रकार की मान्यताएँ आदिवासी समाज में आज भी दिखाई देती है।

अतः हम ऐसा कह सकते है कि आदिवासी जीवन और परंपरा अन्य समाज या जनजाति से अलग है। जिसके कारण आदिवासी संस्कृति की अलग पहचान है। आदिवासीयों की बोली - भाषा, विवाह पद्धत, रहन - सहन, खान - पान, वेश -

भूषा आदि सभी में अन्य समाज की अपेक्षा अंतर दिखाई देता है। लोकगीत, लोकनृत्य के कारण यह लोग हमेशा अपने दु:ख को भूलकर जीवन का आनंद लुटते है। इसी लिए इस परंपरा, संस्कृति का जतन करना आवश्यक है।

संदर्भ सूची :-

(1) हिंदी मे आदिवासी केंन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, संपा.प्रो.डॉ.बी.के. कलासवा, प्रकाशन वर्ष - 2009, मंयूर प्रकाशन, दिल्ली - 110091, पृ.क्र. 156.

(2) आदिवासी कौन ? संपा.रमणिका गुप्ता, प्रथम संस्करण - 2008, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.क्र. 38.

(3) हिंदी में आदिवासी केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, संपा.प्रो.डॉ.बी.के. कलासवा, प्रकाशन वर्ष - 2009, मयूर प्रकाशन, दिल्ली - 110091,पृ.क्र. 127.

(4) हिंदी आदिवासी केन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, संपा.प्रो.डॉ.बी.के. कलासवा, प्रकाशन वर्ष - 2009, मयूर प्रकाशन, दिल्ली - 110091, पृ.क्र. 106.

(5) आदिवासी साहित्य : विविध आयाम, संपा. डॉ. रमेश कुरे, डॉ. मालती शिंदे, प्राचार्य प्रवीण शिंदे संस्करण - 2013 ई., विकास प्रकाशन, कानपुर - 208027, पृ.क्र. 106.

(6) आदिवासी साहित्य : विविध आयाम, संपा. डॉ. रमेश कुरे, डॉ. मालती शिंदे, प्राचार्य प्रवीण शिंदे संस्करण - 2013 ई., विकास प्रकाशन, कानपुर - 208027, पृ.क्र. 117.

☆☆☆